एम.ए. (हिन्दी) – द्वितीय सत्र

अस्मितामूलक-विमर्श (अष्टम् पत्र CC-08)

पाठ-9

जेंडर की अवधारणा और स्त्रीवादी चिंतकों की अवधारणा

स्त्री–विमर्श को नारीवाद (Femenism) के नाम से भी जाना जाता है। नारीवाद एक बौद्धिक, दार्शनिक और राजनीतिक विमर्श है, जिसका उद्देश्य महिलाओं के लिए समान अधिकार और कानूनी संरक्षण प्राप्त करना है। नारीवाद या स्त्री–विमर्श स्त्री–पुरुष के बीच व्याप्त सामाजिक भेदभाव को पुष्ट करने वाली धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, कानूनी एवं अन्य तरह की पितृसत्तात्मक धारणाओं एवं मान्यताओं का खंडन करता है। नारीवाद समाज से स्त्री के साथ उसी तरह के व्यवहार करने की माँग करता है, जैसा वह पुरुषों के साथ करता है। हाल के वर्षों में नारीवाद के साथ तीसरे एवं अन्य यौनिक पहचानों के विमर्श भी यौनिक एवं जेंडर आधारित भेदभाव के विरोध में उभरकर सामने आए हैं। थर्ड जेंडर एवं अन्य यौनिक पहचानों का विमर्श LGBTQ विमर्श के नाम से जाना जाता है। स्त्री–विमर्श से इस विमर्श का गहरा रिश्ता है। ये दोनों विमर्श जेंडर एवं यौनिक पहचानों से जुड़ी उन परंपरागत अवधारणाओं को चुनौती देते हैं, जिसके कारण इन यौनिक अस्मिताओं को समाज की मुख्यधारा से अब तक हाशिये पर रखा गया है।

जेंडर की अवधारणा

सामान्य बोलचाल एवं शब्दकोशों में प्रायः जेंडर, सेक्स, लिंग, यौन आदि शब्दों का अर्थ समान समझा या माना जाता है। नारीवाद ने सबसे पहले 'जेंडर' और 'सेक्स' शब्द के बीच अंतर स्थापित किया क्योंकि ये ही वे शब्द हैं जो किसी भी स्त्री या अन्य लैंगिक पहचानों के शोषण की बुनियाद रखते हैं। 'सेक्स'[1] एक जैविक शब्दावली है जो स्त्री–पुरुष एवं अन्य लिंग के बीच जैविक भेद या जैविक पहचान[2] को प्रदर्शित करता है। वहीं जेंडर

[1] सेक्स केलिए हम इसके हिंदी अनुवाद के रूप में यौन एवं लिंग शब्दों का भी प्रयोग करेंगे। जेंडर बिल्कुल भिन्न अर्थ रखता है, इस कारण हम उसके लिए जेंडर शब्द का ही प्रयोग करेंगे।

[2] इसका संबंध शारीरिक गठन से है। जैसे पुरुषों के शरीर पर दाढ़ी, मूँछ आदि का होना, स्त्रियों के शरीर पर अपेक्षाकृत कम बालों का होना इत्यादि।

शब्द स्त्री एवं पुरुष तथा अन्य लिंग के बीच उनके सामाजिक पहचान या उनके द्वारा निभायी जाने वाली सामाजिक भूमिका का द्योतक है। जेंडर शब्द इस बात की ओर इशारा करता है कि जैविक भेद के अतिरिक्त स्त्री–पुरुष के बीच जितने भी भेद हैं, वे प्राकृतिक न होकर समाज द्वारा निर्मित हैं और अगर ये समाज द्वारा निर्मित भेद हैं तो इन भेदों को दूर भी किया जा सकता है। तात्पर्य यह कि जेंडर का सीधा समाजीकरण की प्रक्रिया से है। समाजीकरण का संबंध उन सामाजिक अभ्यासों से है जिसके द्वारा किसी जैविक प्राणी को सामाजिक प्राणी बनाया जाता है। समाजीकरण के द्वारा ही मनुष्य समाज के विभिन्न रीति–रिवाजों, व्यवहारों और गतिविधियों को सीखता है तथा आत्मसात् करता है और एक जैविक प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में परिणत होता है। सीखने की यह प्रक्रिया समाज के नियमों के अधीन होती है और किसी भी मनुष्य के बचपन से ही शुरू हो जाती है। किसी जैविक लिंग (स्त्री–पुरुष या उभयलिंगी या अन्य लिंग) की सामाजिक भूमिका को तय करने में समाजीकरण की अहम भूमिका होती है। समाजीकरण द्वारा ही तय होता है कि स्त्री–पुरुष या अन्य जैविक लिंगों को समाज में कैसी भूमिका निभानी है। यहीं से किसी मनुष्य के जैविक लिंग की एक सामाजिक पहचान बनती है, जिसके तहत वह स्त्री–पुरुष या अन्य लिंग के रूप में अपनी–अपनी पहले से तय लैंगिक भूमिकाओं को निभाता है, जिसे जेंडर कहा जाता है। जेंडर ही स्त्रीत्व और पुरुषत्व के गुणों का निर्धारण करता है। यानी किसी तरह के मानवीय गुण को स्त्री की विशेषता माना जाए और किसे पुरुष की। उदाहरण के लिए अधिकांश समाजों में करुणा, त्याग, कोमलता, रुदन, ममता आदि गुणों को स्त्रियों का स्वाभिवक का गुण माना जाता है जबकि कठोरता, क्रूरता, हिंसा, क्रोध आदि को पुरुषों का स्वाभाविक गुण। तात्पर्य यह कि 'जेंडर का संबंध एक ओर पहचान से है तो दूसरी ओर सामाजिक विकास की प्रक्रिया के तहत स्त्री–पुरुष की भूमिका से। जहाँ मनुष्य और मनुष्य के बीच अंतर किया गया और एक स्त्री और दूसरे को पुरुष कहा गया।'[3]

जेंडर का दायरा बाहरी दुनिया से लेकर किसी व्यक्ति की निजी पसंद–नापसंद तक से जुड़ा होता है। यहाँ तक कि भाषाएँ भी जेंडर से अछूती नहीं हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया में भाषा की सर्वोपरि भूमिका होती है इस कारण दुनिया की अधिकांश भाषाओं में लिंग भी मौजूद है। भाषाओं में जेंडर विभाजन के मुख्यतः तीन रूप मिलते हैं– स्त्रीलिंग

[3] भावना मासीवाल, जेंडर की अवधारणा और अन्या से अनन्या, http://streekaal.com/2014/10/blog-post_29-5/

(feminine), पुल्लिंग (masculine) और नपुंसक लिंग या न्यूट्रल जेंडर। हिंदी एवं अंग्रेजी सहित कई भाषाओं में स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग केवल दो रूपों का प्रयोग मिलता है, जबकि संस्कृत में नपुंसक लिंग (उभयलिंगी) का प्रयोग भी होता है। किसी भाषा में यह तीसरा लिंग स्त्रीत्व व पुरुषत्व के समाज में निर्धारित गुणों से अलग स्वतंत्र पहचान से जुड़ा है तो वहीं संस्कृत जैसी भाषा में तीसरे लिंग से अभिप्राय स्त्रीत्व व पुरुषत्व के गुणों का साथ होना है। यही कारण है कि प्रसिद्ध स्त्रीवादी चिंतक बारबरा जॉनसन मानती हैं कि 'जेंडर (स्त्री) का सवाल भाषा का सवाल है क्योंकि भाषा भौतिक रूपों में हस्तक्षेप करती है।'[4]

अतः जेंडर संबंधी अस्मिता (Gender Identity) का सीधा संबंध किसी व्यक्ति द्वारा समाज में उसके लैंगिक व्यवहारों की अभिव्यक्ति (Gender Expression) एवं उसके लैंगिक भूमिकाओं (Gender Role) से होता है। यही कारण है कि हर दौर के स्त्रीवादी चिंतकों की यह ठोस अवधारणा है कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है।'

स्त्रीवादी चिंतकों की जेंडर संबंधी अवधारणा

जेंडर का सीधा संबंध समाजीकरण है। स्त्रीवादी चिंतकों ने स्त्रियों को पुरुषों के मुकाबले प्राकृतिक रूप से कमजोर ठहराकर उनकी पराधीन स्थिति को सही बताने वाली मान्यताओं का खंडन किया। स्त्रीवादी चिंतकों ने यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि स्त्रियों की पराधीनता या शोषण का कारण उनकी जैविक रूप से भिन्नता नहीं है बल्कि सामाजिक मानदंड हैं। सन् 1789 के फ्रांसीसी क्रांति के समय पहली बार महिलाओं के लिए सामाजिक–राजनीतिक समानता की माँग उठी। इसी दौर में मेरी वॉलस्टोक्रॉफ्ट पहली स्त्रीवादी चिंतक थीं, जिन्होंने महिलाओं के लिए समान अधिकारों के पक्ष में मजबूत तर्क रखा और इस अवधारणा को चुनौती दी कि महिलाओं में कोमलता, डर, विनम्रता जैसे गुण सहजात होते हैं। सन् 1792 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *A Vindication of the Rights of Woman* (स्त्री अधिकारों का औचित्य प्रतिपादन) में वे इस बात पर जोर देती हैं कि जिन गुणों को हम स्त्रीत्व का या मानवीय कमजोरियों का पर्याय समझते हैं, वे स्त्रियों को बचपन से ही सिखाया जाता है। मेरी इस बारे में लिखती हैं – "बचपन से ही माँ के

[4] भावना मासीवाल, जेंडर की अवधारणा और अन्या से अनन्या, http://streekaal.com/2014/10/blog-post_29-5/

उदाहरणों से स्त्रियों को सिखाया जाता है कि उन्हें मानव कमजोरियों का थोड़ा–बहुत ज्ञान होना चाहिए – उन्हें कोमल स्वभाव का, विनम्र तथा आज्ञाकारी, धर्मभीरू, कर्तव्यनिष्ठ और मर्यादित होना चाहिए ताकि उनके आदमियों का कल्याण हो; और उन्हें खूबसूरत तो अवश्य होना या दिखना चाहिए – कम से कम अपने जीवन के बीस वर्षों तक; इसके अलावे उनके लिए अन्य सारी बातें गैर–जरूरी हैं।"[5]

जैविक भिन्नता को बहाने स्त्रियों को प्राकृतिक, शारीरिक और मानसिक रूप से पुरुषों के हीन ठहराने की कवायद आज तक बदस्तूर जारी है। हालाँकि आज तरह–तरह के नारीवादी आंदोलनों एवं विमर्शों के कारण परिस्थितियों में बहुत परिवर्तन आ गया है और इस धारणा में बहुत हद तक बदलाव भी आया है। लेकिन 18वीं और 19 वीं शताब्दी में इस धारणा के खिलाफ खड़ा होना काफी मुश्किल था। इस कठिन दौर में स्त्री–पुरुष के बीच प्राकृतिक भिन्नता के आधार पर सामाजिक भिन्नता को जायज ठहराने के तर्कों का प्रतिवाद मेरी वॉलस्टोक्रॉफ्ट के बाद किसी ने अगर पुरजोर तरीके से किया तो वे थे – जॉन स्टुअर्ट मिल। मिल ने सन् 1869 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'The Subjection of Women' (स्त्रियों की पराधीनता) में जोरदार तर्कों से यह साबित किया कि जिसे हम स्त्रियों का प्राकृतिक गुण समझते हैं, वह वास्तव में पंरपरागत है यानी समाज द्वारा निर्मित। मिल लिखते हैं – "सारी नैतिकता उन्हें बताती है कि यह महिलाओं का कर्तव्य है और सभी मौजूदा भावनाओं के अनुसार उनका यह स्वभाव है कि वे दूसरों के लिए जियें, पूर्ण आत्मत्याग करें और अपने स्नेह संबंधों के अतिरिक्त उनका अपना कोई जीवन न हो।"[6] मिल यह तर्क देते हैं कि जिसे हम महिलाओं का स्वभाव समझते हैं , वह दरअसल एक निर्मित और कृत्रिम चीज है। वे इसे महिलाओं के जबरन दमन से जोड़कर देखते हैं – "आज जिसे महिलाओं का स्वभाव कहा जाता है, वह ज्यादातर एक कृत्रिम चीज है – कुछ दिशाओं में जबरन दमन व कुछ में अस्वाभाविक प्रेरकों का परिणाम।"[7]

महिलाओं को घरेलू कामों तक सीमित रखने के लिए प्राचीन काल से ही यह तर्क दिया जाता रहा है कि महिलाओं को आजादी देने से प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाएगा। मिल

---

[5] उद्धृत, अनभै साँचा, जनवरी–मार्च, 2009, अंक 13, पृष्ठ –58 ('ईश्वर ने तुम्हें भिन्न बनाया, प्रकृति ने हमें अलग बनाया'- वी.गीथा के लेख से)

[6] जॉन स्टुअर्ट मिल, स्त्रियों की पराधीनता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति – 2009, पृष्ठ –46

[7] वही, पृष्ठ – 53

इन तर्कों का खंडन करते हैं कि महिलाओं को पूर्ण आजादी देने से वे अपने स्वभाव के विपरीत कार्य करने लगेंगी और यह प्रकृति के नियमों के खिलाफ होगा। मिल इस बार पर जोर देते हैं कि महिलाओं को पूर्ण स्वतंत्रता देने से वे वह काम नहीं करने लग जाएंगी जो उनके प्रकृति प्रदत्त स्वभाव के विपरीत है। मिल का तर्क है – "एक बात तो हम निश्चित तौर पर कह सकते हैं – कि जो करना स्त्री–स्वभाव के प्रतिकूल है, यदि उन्हें पूरी आजादी दे दी जाये तो भी वे वह काम नहीं करेंगी। प्रकृति के तरफ से दखलन्दाजी करने की चिंता, इस भय से कि कहीं प्रकृति अपने उद्देश्य में नाकामयाब न हो जाये, मानव जाति की अनावश्यक चिंता है। महिलाएँ जो काम स्वभावतः नहीं कर सकतीं, उस काम से उन्हें वर्जित करना एकदम अनावश्यक है।"[8]

मिल के तर्कों का सार यह है कि महिलाओं को सबकुछ करने की पूर्ण आजादी होनी चाहिए। जिसे हम महिलाओं का स्वभाव मानते हैं, वह वास्तव में पाबंदियों द्वारा निर्मित है। अगर कोई प्राकृतिक स्वभाव सिर्फ महिलाओं से जुड़ा है तो सब कुछ करने की आजादी मिलने के बावजूद वे इस स्वभाव के विपरीत काम नहीं कर पाएँगी।

मिल के इन विचारों ने बाद के स्त्रीवादी चिंतकों के जेंडर संबंधी अवधारणाओं के लिए बुनियाद तैयार की। मिल के बाद जेंडर के बारे में गहराई से विचार करने वाली स्त्रीवादी चिंतक सिमोन द बोउवार थीं। सिमोन ने सन् 1949 में 'द सेकेंड सेक्स' (हिंदी में इसका अनुवाद 'स्त्री उपेक्षिता' के नाम से प्रभा खेतान ने किया है) नामक किताब लिखी। इस किताब में सिमोन ने यह विचार स्थापित किया कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है'। सिमोन ने उन सारे सामाजिक व्यवहारों और विचारों की पड़ताल की जो स्त्री की स्त्री के तौर पर भूमिका (Gender Role) को निर्धारित करते हैं। एक जेंडर के तौर पर स्त्री के बारे में सिमोन ने लिखा है – "कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नहीं होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबोगरीब जीव का विकास करती है। पुरुष और हिजड़े के बीच अवस्थित यह जीव स्त्री के रूप में वर्णित होता है।"[9] सिमोन इस बात पर जोर देती हैं कि एक स्त्री जिस रूप में अपना व्यवहार करती है, उसके लिए कोई एक तत्त्व को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। पूरी सभ्यता ही स्त्री को निर्मित करती है। यही नहीं वह स्त्री के हर पक्ष यहाँ तक कि उसके स्वभाव और

[8] वही, पृष्ठ–58

[9] सिमोन द बोउवार, स्त्री उपेक्षिता (अनुवाद : प्रभा खेतान), पृष्ठ–119

इच्छाओं–आकांक्षाओं को भी तय करती है। सीमोन का इस बात पर बल देती हैं कि मानव सभ्यता स्त्री को एक समुदाय के तौर पर यह सोचने–समझने का अवकाश ही नहीं देती है कि वह समाज में सर्वोपरि स्थान प्राप्त कर सकती है। इस बारे में सीमोन ने लिखा है – "स्त्री का स्वभाव, विश्वास, मान्यताएँ, नैतिकता, रुचि और व्यवहार का विमोचन उसकी स्थिति द्वारा होता है। चूँकि वह जानती है कि वह सर्वोपरि स्थान नहीं प्राप्त कर सकती, इसलिए वह वीरता, विद्रोह, सृजन और कल्पना के ऊँचे आदर्शों से अलग रहती है।"[10]

20 वीं सदी में 50 के दशक के बाद जेंडर को लेकर बहस में तीव्रता आई। नवीन वैज्ञानिक खोजों के आधार पर स्त्रीवादी चिंतकों ने स्त्री के पुरुष की तुलना में जैविक रूप से कमतर होने के सिद्धांतों को भी चुनौती दी। कई तरह के नारीवादी आंदोलनों और बाद में चलकर समलैंगिक विमर्श या थर्ड जेंडर के संबंधित विमर्शों ने जेंडर के बहस को नया आयाम दिया। सन् 1963 में केट मिलेट की 'द फेमिनिन मिस्टिक', सन् 1968 में सुलामिथ फायर स्टोन की 'डायलेक्टिक ऑफ़ सेक्स', सन् 1971 में जूलियट मिशेल की 'वुमेन स्टेट', सन 1968 में रॉबर्ट स्टोलर की *Sex and Gender: The Development of Masculinity and Femininity*, सन् 1972 में ऐना ओक्ले (Ann Oakley) की *sex, gender and Society* जैसी पुस्तकों के प्रकाशन ने जेंडर संबंधी पितृसत्तात्मक धारणाओं की बुनियाद हिला दी।

इन विचारकों ने जैविक लिंग (sex) और इस जैविक लिंग की सामाजिक भूमिका के बीच के अंतर को स्पष्ट करने का प्रयास किया। सेक्स और जेंडर के बीच के अंतर बारे में स्टोलर ने 'जेंडर का अर्थ प्रकृति से न मानकर मनोवैज्ञानिक व सांस्कृतिक संदर्भों से जोड़ कर देखा और कहा कि सेक्स का संबंध स्त्री और पुरुष से है तो जेंडर का संबंध स्त्रीत्व व पुरुषत्व से।'[11] ऐना ओक्ले, कोनेल जैसे विद्वानों का मानना है कि जेंडर एक सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना है। यह उन सामाजिक नियमों और कानूनों का निर्धारण करता है जिससे स्त्रीत्व और पुरुषत्व के गुण गढ़े जाते हैं।

---

[10] वही, पृष्ठ –287

[11] उद्धृत, भावना मासीवाल, जेंडर की अवधारणा और अन्या से अनन्या, http://streekaal.com/2014/10/blog-post_29-5/

नवीन जीवविज्ञान के शोधों के आधार पर पिछले कुछ दशकों से नारीवादी आंदोलन के भीतर से यह तर्क उभरकर सामने आ रहा है कि सिर्फ जेंडर ही नहीं बल्कि सेक्स भी सामाजिक वातारण से निर्धारित होता है। लिंडा बिर्के, एलिसन जैग्गर, निवेदिता मेनन जैसी नारीवादी विचारकों का मानना है कि सिर्फ जेंडर ही नहीं बल्कि सेक्स भी समाज द्वारा संचालित और निर्धारित होता है। इसके लिए इन नारीवादी विचारकों ने जीवविज्ञान के आधुनिक शोधों का सहारा लिया है। लिंडा बिर्के सन् 1986 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *Women, feminism and Biology: The Feminist Challenges* में लिखती है – 'सेक्स और जेंडर दोनों में से कोई भी स्थिर नहीं है । जिस प्रकार मानव शरीर अपने आसपास के सामाजिक वातावरण के अनुकूल परिवर्तित होता रहता है उसी प्रकार सेक्स और जेंडर भी'।[12]

लिंडा के ही मत को विस्तारित करते हुए एलिसन जैग्गर सेक्स और जेंडर के संदर्भ में लिखती हैं 'इंसान का हाथ श्रम का औजार ही नहीं, श्रम की उपज भी है।'[13] अर्थात् मानवीय हस्तक्षेप बाहरी वातावरण को परिवर्तित करता है और साथ ही बाहरी वातावरण में होने वाले परिवर्तनों से मानव शरीर में परिवर्तन और उसका स्वरूप निर्धारित होता है। इसी तरह निवेदिता मेनन भी अपनी पुस्तक *Seeing Like a Feminist* यह बताती हैं कि मानव प्रजाति में सिर्फ सेक्स को निर्धारित करने वाले XX (महिला) और XY (पुरुष) गुणसूत्रों के अतिरिक्त सेक्स का निर्धारण करने वाले अन्य गुणसूत्रों के युग्म भी मिलते हैं। अतः यह आवश्यक नहीं कि ये गुणसूत्र किसी की यौनिकता या यौन–जीवन का निर्धारण करें। यानी सेक्स और जेंडर दोनों ही सामाजिक नियमों से 'निरपेक्ष' या 'अपरिवर्तनीय' नहीं हैं बल्कि एलिसन, लिंडा, निवेदिता आदि नारीवादी विचारकों अनुसार कहा जाए तो ये दोनों 'परिवर्तनीय' हैं। मतलब सामाजिक वातावरण में बदलाव से जेंडर और सेक्स दोनों की भूमिका और गुणों में बदलाव लाया जा सकता है और सेक्स को भी जेंडर की तरह ही जैविकता नहीं बल्कि समाजीकरण की प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

---

[12] उद्धृत, भावना मासीवाल, जेंडर की अवधारणा और अन्या से अनन्या, http://streekaal.com/2014/10/blog-post_29-5/
[13] उद्धृत, भावना मासीवाल, जेंडर की अवधारणा और अन्या से अनन्या, http://streekaal.com/2014/10/blog-post_29-5/

हंस में प्रकाशित अपने आलेख *'सबल स्त्री का शास्त्र'* में अशोक झा ने भी नैताली एंजियर, डियाल हेल्स, हेलन फिशर आदि के पुस्तकों के माध्यम से यह बताया है कि जीवविज्ञान के दृष्टिकोण से स्त्रियाँ पुरुषों से शारीरिक रूप से कमजोर या हीन नहीं हैं। बल्कि कई मामलों में वे पुरुषों से अधिक मजबूत हैं। महिलाओं और पुरुषों के बीच जो शारीरिक अंतर हैं वे सिर्फ अंतर भर हैं। हेल्स ने इस बारे में लिखती हैं – "स्त्री एवं पुरुष के बीच जो अंतर है वह वास्तव में अंतर भर है, न कि किसी तरह की गड़बड़ी, क्षति या बीमारी का कोई संकेत। महिलाएँ 'अन्या' नहीं बल्कि एक अलग लिंग हैं।"[14]

संक्षेप में सेक्स एवं जेंडर संबंधी बहस किसी भी नारीवादी आंदोलन का मुख्य बहस रहा है। महिलाओं को उनके अधिकारों से वंचित रखने केलिए सदियों से यह तर्क दिया जा रहा है कि प्राकृतिक रूप से वे पुरुषों हीन सेक्स हैं और उन्हें कुछ प्रकृति प्रदत्त गुण प्राप्त हैं। पुरुषों के गुण सामाजिक जीवन के अनुकूल हैं तो महिलाओं के गुण घरेलू जीवन के। नारीवादियों ने इसी परंपरागत सोच को जेंडर और सेक्स की बहस से चुनौती दी है। जेंडर और सेक्स संबंधी प्रश्न हल तो नहीं हो गए हैं लेकिन विभिन्न नारीवादी आंदोलनों के कारण आधुनिक युग में महिलाओं की सामाजिक भूमिका बढ़ी है। हर क्षेत्र में महिलाओं ने कामयाबी हासिल करके यह बता दिया है कि वे उन सभी कार्यों को कर सकती हैं, जो पुरुष कर सकते हैं।

[14] उद्धृत, सबल स्त्री का शास्त्र, हंस, मार्च 2001, पृष्ठ–184